..और मैं संन्यासी से पक्का ब्रह्माकुमार बन गया

• ब्रह्माकुमार बिपीन, चिरकुण्डा (झारखण्ड)

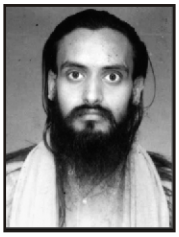

बाल्यकाल से ही मेरे मन में प्रभु-मिलन की आशा जागृत हुई। पूजा-घर में श्री रामकृष्ण परमहंस का, माँ काली को प्रसाद ग्रहण कराते हुए एक फोटो लगा हुआ था। उसे देखकर मुझे भी बहुत इच्छा होती थी कि मैं भी ऐसे ही माँ के साक्षात् दर्शन करूँ। इसी बीच बचपन के एक मित्र ने स्वामी विवेकानन्द जी की एक किताब 'युवा भारत का आधार' मुझे दी जिसे पढ़कर मुझे काफी आध्यात्मिक जागृति आई।

प्रभु प्राप्ति की लगन

उन दिनों स्वामी सत्यानन्द सरस्वती महाराज जी ने रिखिया नामक स्थान पर परमहंस अलखबाड़ा एवं शिवानन्द मठ की स्थापना की जो मेरे ननिहाल से मात्र 6 कि.मी. की दूरी पर था। मैं वहाँ जाने लगा। मुझे तीव्र इच्छा जागृत हुई कि मैं भी इनके जैसा संन्यासी बनूँ एवं आश्रम में ही रहूँ। मैंने उन्हें अपनी इच्छा एक पत्र के माध्यम से बताई परंतु कोई जवाब नहीं मिला। अंत में मैंने एक पत्र में यह स्पष्ट लिखा कि अगर आप मुझे नहीं अपनायेंगे तो मैं आत्महत्या कर लूँगा क्योंकि मैं आपको अपना गुरु मान चुका हूँ। आखिर वह दिन भी आया जब उस आश्रम की प्रबंधिका जी ने मुझे अपने कक्ष में बुलाया और पूछा – क्या तुम्हें कोई सांसारिक दु:ख है? संन्यास मार्ग तो बहुत कठिन मार्ग है। नंगी तलवार पर चलने के समान है। त्यागमय जीवन है। अगर पढ़ाई करनी है, कोई नौकरी करनी है या फिर पैसा चाहिए तो बोलो। प्रत्युत्तर में मैं बोला – स्वामी जी, मैं भगवान को पाने के लिए सभी कठिनाइयों को सहन कर लूँगा परंतु मुझे प्रभु-मिलन का रास्ता दिखाइए। आखिर मेरी दृढ़ता रंग लाई। दिनांक 25 जनवरी, 97 को पत्र द्वारा मुझे स्वामी जी की स्वीकृति की सूचना मिली और 26 जनवरी को इस संसार को त्यागकर मैंने संन्यास जीवन धारण किया।

कर्मबन्धन की बाधा

अगले दिन मेरे मामा, नाना तथा अन्य अनेक संबंधी आश्रम पर पहुँच गये एवं मुझे वापिस ले जाने के लिए काफी हंगामा करने लगे। आश्रम की तरफ से पुलिस बुलाई गई तब वे वापिस गए। परंतु 29 तारीख को मुझे सूचित किया गया कि माताजी की हालत बहुत गंभीर है। स्वामी जी से आदेश प्राप्त कर मैं माताजी को देखने के लिए चल पड़ा। उनको सांत्वना देकर वापिस लौटने लगा तो कुछ लोगों ने मेरे संन्यास वाले पीले वस्त्र उतार दिये एवं शर्ट-पैंट पहनाकर मुझे एक कमरे में बंद कर दिया। सुबह कमरे का दरवाज़ा खोला गया। मैं बलपूर्वक आश्रम पहुँच गया परंतु मुझे अंदर प्रवेश नहीं दिया गया। प्रबंधिका स्वामी जी ने कहा कि तुम पहले अपने परिवार वालों को समझाओ अन्यथा आश्रम का वातावरण अशांत हो रहा है। अभी तुम आश्रम में नहीं रह सकते क्योंकि तुमने कर्म-संन्यास धारण कर लौकिक घर में रात्रि निवास किया, यह संन्यास धर्म के विरुद्ध है।

फिर घरवालों ने मुझे आगे की पढ़ाई के लिए पटना भेज दिया। नवंबर, 1999 में देवघर के प्रसिद्ध अरुणाचल मिशन के लीला मंदिर में 96 वर्ष के वयोवृद्ध स्वामी विनयानन्द तीर्थपुरी जी महाराज के दर्शन कर मुझे बहुत शांति मिली। मेरे आग्रह पर 2 दिसंबर को उन्होंने मुझे अपना मंत्र-शिष्य स्वीकार कर लिया। जनवरी, 2000 को घर छोड़कर मैं पुन: संपूर्ण रूप से आश्रमवासी बन गया।

पुन: संन्यास ग्रहण विधि

अब मैं आश्रम में सभी तरह के कार्यों में व्यस्त रहने लगा। नवंबर, 2001 को मेरी संन्यास ग्रहण विधि हुई और मेरा नाम सत्यदासानन्द ब्रह्मचारी रखा गया। संन्यासी वेश में

देखकर आश्रम के अन्य संन्यासी मेरी टीका-टिप्पणी करने लगे। उनकी परवाह किये बिना मैं अपना कार्य करने लगा। मार्च, 2002 में गुरुदेव देह-त्याग कर चल बसे।

अंदर का द्वंद्व बढ़ता गया

अब तो आश्रम की गद्दी की खुली लड़ाई शुरू हो गई। अनेकानेक घृणास्पद घटनाएँ सामने घटते देखकर मन बहुत दु:खी हो गया। मैंने अन्य अनेक आश्रमों को काफी नजदीक से देखा। लगभग सभी स्थानों पर परोक्ष या अपरोक्ष रूप से इसी प्रकार का द्वंद्व देखा। जीवन में त्याग नाम की चीज़ का नितांत अभाव देखा। क्रोध का कदम-कदम पर साम्राज्य देखा। चारों ओर दिखावा ही दिखावा नज़र आया। भक्तों को झूठी तसल्ली देकर बड़े-बड़े आध्यात्मिक आयोजनों का ढोंग रचकर मान-सम्मान व धन प्राप्त करने का झूठा खेल देखा। एक बार मुझे उज्जैन में हो रहे कुंभ मेले में जाने का निमंत्रण प्राप्त हुआ। अन्य संन्यासियों के साथ मैं वहाँ गया। लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करके अपना शो करने की प्रतिस्पर्धा वहाँ लगी हुई थी। बड़े-बड़े मठाधीशों, पीठाधीशों, महामण्डलेश्वरों, संन्यासियों को शिप्रा नदी में सबसे पहले शाही स्नान करने के लिए आपस में बुरी तरह लड़ते-झगड़ते देखकर मेरा मन बहुत दु:खी हो गया। अपने आश्रम में पूरे लिबास में रहने वाले बड़े-बड़े संन्यासियों को जब भरी भीड़ के बीच में से संपूर्ण नग्न होकर स्नान करने जाते देखा तो मुझे बहुत शर्म आने लगी। मुझे यह संपूर्ण निश्चय हो गया कि इन सभी कर्मकाण्डों आदि से परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता। मैं परमात्मा से प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभु! आप जैसे भी हो, चाहे साकार हो या निराकार हो, मुझे मार्गदर्शन दो, मुझे सत्य पथ दिखलाओ। अब मैंने संकल्प कर लिया कि आश्रम छोड़कर हिमालय में जाकर तपस्या करूँगा। अगर तपस्या के बाद भी भगवान नहीं मिले तो गंगोत्री में कूदकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दूँगा। मैंने परमात्मा से प्रार्थना की कि मुझे या तो सत्य पथ दिखलाओ या फिर मौत दो। मैं अब इस असार, दु:खमयी तथा अधर्म की दुनिया में नहीं रहना चाहता। इसमें कोई संदेह नहीं कि मुझे अपार मान-सम्मान भक्तों द्वारा मिलता, बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति, राजनेतागण, मंत्री तथा सरकारी अधिकारी चरणों में झुकते परंतु अपने मन की दुविधा किसी को सुना नहीं सकता था। वेद-वेदांत, शास्त्रों को पढ़कर उलझनें और भी बढ़ जाती थी क्योंकि किसी में कुछ लिखा है तो किसी में कुछ। रोज़ नियमित रूप से गीता पाठ करना आश्रम का प्रमुख कर्म था परंतु मैं यह समझ नहीं पाता था कि आखिर गीता का सत्य क्या है! भगवान कहीं पर कहते हैं कि मैं अजन्मा हूँ तो कहीं स्वयं को पीपल, गंगा, कपिल मुनि आदि के रूप में विद्यमान कहते हैं। कहीं कहते हैं कि मेरा धाम सूर्य-चंद्र-तारागणों से भी पार है जहाँ इनकी रोशनी नहीं पहुँच पाती है तो कहीं कहते हैं कि मैं सर्वव्यापी हूँ। विषय-वस्तु में इस प्रकार आपसी विरोधाभास महसूस होता था। न चाहते हुए भी जैसे हम उलझे हुए रहते थे और वैसे ही हमें अपने भक्तों को भी उलझाए रखना पड़ता था, नहीं तो वे हमें मान और दान नहीं देंगे, फिर आश्रम चलेगा कैसे।

ब्रह्माकुमारी संस्था के प्रति श्रद्धा

मैं अनेक जाने-माने साधु-संतों से उनका निजी अनुभव पूछता था कि उन्होंने परमात्मा का दर्शन किया या नहीं तथा उन्हें मन की शांति मिली या नहीं। हरेक से एक ही जवाब मिलता था कि नहीं, हम अभी भी उनकी खोज में हैं। मैंने देखा कि हरेक अपने पंथ को ही श्रेष्ठ सिद्ध करने में तथा एक-दूसरे की आलोचना करने में लगा हुआ है। कई संतों ने तो मुझे अपने पंथ में शामिल होने के लिए सुझाव भी दे डाले। चारों ओर द्वंद्व ही द्वंद्व देखा। पाँच विकारों से मुक्त कोई भी नहीं नज़र आया। सभी विकारों की ज्वाला में जलते प्रतीत हुए। सिर्फ बाहरी रंग-रूप के ऊपर ही जैसे कि आज का धर्म टिका हुआ है। अनेक

उलझनों को मन में समाकर भी मैं आश्रम के सेवा-कार्य में व्यस्त रहने की कोशिश करता था। इसी बीच एक बार एक महान विद्वान बुजुर्ग संत डॉ. शिवानंद गोस्वामी जी हमारे आश्रम में पधारे। मैंने अपनी समस्याएँ और जिज्ञासाएँ उनके समक्ष रखीं तो उन्होंने कहा कि मैंने संपूर्ण विश्व का भ्रमण किया है परंतु परमात्मा का दर्शन कहीं भी नहीं मिला। इसलिए मेरा अनुभव यह कहता है कि सभी मनुष्य मात्र को नारायण का रूप मानकर उनका सम्मान करो तथा उनकी सेवा करो। उन्होंने मुझे यह आश्रम त्याग करने की आज्ञा दी और मैंने इसे स्वीकार कर लिया। मैं इसकी तैयारी करने लगा। परंतु कुछ दिनों से मेरी कमर तथा दाहिने पैर में दर्द कुछ ज़्यादा ही बढ़ने लगा था जिस कारण मेरा चलना-फिरना भी मुश्किल हो रहा था। कई तरह के इलाज करवाये पर दर्द ठीक नहीं हो रहा था। यह देखकर मेरे लौकिक भाई ने मुझे 'ज्ञानामृत' पत्रिका में एक लेख पढ़ाया जिसमें चुंबकीय चिकित्सा द्वारा दर्द निवारण की बात लिखी हुई थी। उस लेख को पढ़कर मैंने अपने लौकिक भाई के साथ माउंट आबू जाने का निर्णय लिया। मेरी लौकिक माताजी एवं भाई विगत 12 वर्षों से प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय से जुड़े हुए हैं। वे समय प्रति समय मुझे ईश्वरीय-ज्ञान से परिचित कराने के लिए, हमारे आश्रम पर ब्रह्माकुमारी बहनों को लेकर आते थे परंतु मैं उनकी बातें कभी सुनता ही नहीं था। क्योंकि यह ज्ञान तो भक्ति मार्ग के बिल्कुल विपरीत ही प्रतीत होता था जिसे मैं उस समय कदापि स्वीकार नहीं कर पा रहा था। मैं तो ब्रह्माकुमारियों का कट्टर विरोधी ही था। कोई उनकी तारीफ करता तो भी मुझे अच्छा नहीं लगता था परंतु अब मेरे विचारों में परिवर्तन आने लगा। मैं स्थानीय सेवाकेंद्र पर भी गया। वहाँ के प्रार्थना सभागार में मुझे बहुत सुंदर अनुभव होने लगे। मैंने ब्रह्मा बाबा का साक्षात् दर्शन किया। बाबा दोनों बाँहें फैलाकर मुझे बुला रहे थे और उसके बाद चारों ओर लाल रोशनी नज़र आने लगी। यह सब मैंने खुले नेत्रों से स्पष्ट देखा। बहुत अच्छा लग रहा था। संस्था के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी।

माउंट आबू के लिए प्रस्थान

आखिर 4 दिसंबर, 2005 को मैंने अपने लौकिक भाई के साथ माउंट आबू के लिए प्रस्थान किया। छह दिसंबर को प्रात:काल आबूरोड स्टेशन पर उतरकर संस्था की बस द्वारा शांतिवन के विशाल व भव्य परिसर में पहुँचा। उस दिन वहाँ विश्राम कर दूसरे दिन आबू पर्वत पर स्थित ग्लोबल अस्पताल में पहुँचा। अस्पताल में सेवारत ब्रह्माकुमार अनिल भाई ने शारीरिक चिकित्सा के साथ-साथ मेरी आत्मिक चिकित्सा की भी व्यवस्था की। डॉ. श्रीमन्त जी से मेरी मुलाकात करवाई गई। मुझे तो गेरु वस्त्रधारी संन्यासी होने का अभिमान था इसलिए प्रारंभ में किसी से भी ज्ञान सुनना पसंद नहीं किया और ज्ञान का कोर्स करने के लिए भी मना कर दिया। परंतु निमित्त बने ब्रह्माकुमार भाई के मीठे व्यवहार व विनम्रता ने मुझे बहुत प्रभावित किया जिस कारण मैंने ब्रह्माकुमारियों की विचारधारा को सुनना प्रारंभ कर दिया। बीच-बीच में लगातार अनेक प्रश्न भी किये परंतु, शांतचित्त स्थिति में रहते हुए विनम्रतापूर्वक, युक्तियुक्त व नवीनतापूर्ण उत्तर दिए जाने पर मुझे और भी सुनने की इच्छा जाग्रत हुई। तीन दिन सुनने के बाद मुझे यह पूर्ण निश्चय हो गया कि यह ज्ञान किसी मनुष्य के द्वारा दिया हुआ न होकर स्वयं सर्वशक्तिमान परमात्मा द्वारा ही दिया गया है। मुझे महसूस हुआ कि इसी सत्य ज्ञान को पाने के लिए ही तो मैं बेताब होकर दर-दर भटक रहा था। दिल में यह उद्‌गार बारंबार उठने लगा कि 'ओहो प्रभु ... आप मिल गये, और आपने मुझे एक भक्त की बजाय अपना बच्चा ही बना लिया।' मुझे सारे प्रश्नों के उत्तर मिल गये। मेरी ज्ञान-पिपासा शांत होने लगी, मैं संतुष्ट हो गया। अब मुझे यह संन्यासी वेश भी जैसे कि बनावटी लगने लगा। जब रहा न गया तो बिना किसी को बताये चुपके से बाज़ार की

ओर चल पड़ा। सबसे पहले विगत 6 वर्षों से बढ़े हुए लंबे-लंबे बाल और दाढ़ी-मूँछें साफ करवाई। फिर सफेद कुर्ता-पायजामा खरीदा। अब मैं एक साधारण ब्रह्माकुमार के वेश में था। आइने में मैं स्वयं ही स्वयं को नहीं पहचान पाया। निमित्त भाई पहले तो मुझे पहचान न सके, पहचाना तो बहुत ही प्रसन्न हुए परंतु यह भी कहा कि आप उसी वेश में ही रहकर बाबा के ज्ञान को अन्य संन्यासियों को सुनाते तो उन पर अधिक अच्छा प्रभाव पड़ता। परंतु मुझे तो बाबा का सपूत बच्चा बनकर रहने की लगन लग गई थी, शिव बाबा की श्रीमत पर पूरी तरह चलने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। संन्यासी बनकर आश्रम में रहने पर भोजन तो गृहस्थियों का पकाया ही खाना पड़ता। इस प्रकार पहला दोष, अन्नदोष छूट न पाता। आश्रम का सारा कार्य तो देह-अभिमान पर ही आधारित रहता है। ध्यान व पूजा भी देहधारी गुरु की ही करनी होती है। इस तरह की अनेकानेक बातों को ध्यान में रख अब संन्यासी जीवन त्यागना ही मैंने उचित समझा क्योंकि मैंने जो पाना था सो पा लिया। मेरे लिए वह शुभ घड़ी भी आई जब मुझे गुलजार दादी जी के तन में प्रविष्ट अव्यक्त बापदादा (शिव परमात्मा एवं ब्रह्मा बाबा) से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब गुलजार दादी जी ध्यान में गई तो मुझे दादी जी का तन दिखाई नहीं दे रहा था। उनके स्थान पर स्पष्ट रूप से मुझे ब्रह्मा बाबा ही दिखाई दे रहे थे और उसके बाद तीव्र रोशनी बिखेरते हुए एक ज्योति पिण्ड दिखाई दे रहा था जिसे मैं काफी समय तक एकटक निहारता रहा। उस समय मैं पूर्णत: विदेही अवस्था का अनुभव करता रहा। मुझे प्रभु मिलन का वह सच्चा आनन्द आया जिसके लिए मैं तरसता रहता था। पहली बार जीवन में इस प्रकार के आनन्द की अनुभूति हुई। मैं स्वयं को धन्य-धन्य समझने लगा कि अब मैंने उस परमपिता परमात्मा को पा लिया जिसे सारी दुनिया ढूँढ़ रही है।

भक्ति का फल भगवान मिल गया

परमात्म प्यार और ब्राह्मण परिवार के प्यार से मैं अभिभूत व ओतप्रोत था और बाबा का घर छोड़कर वापिस जाने का मन ही नहीं कर रहा था। परंतु लौटना तो पड़ा ही। मुझे नये रूप में देखकर आश्रमवासियों ने मुझ पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी। वे मुझसे इस तरह व्यवहार कर रहे थे मानो दाढ़ी-मूँछ कटवाकर एवं साधारण सफेद वस्त्र धारण कर मैंने कोई अक्षम्य अपराध कर दिया हो। वे मुझे घृणा की दृष्टि से देखने लगे। भला-बुरा कहकर अपमानित करने लगे। यह मेरे लिए एक कठिन परीक्षा थी। इतना मान-शान-सम्मान पाने वाले एक संन्यासी को आज खुलेआम अपमानित किया जा रहा था परंतु प्यारे शिवबाबा की खातिर इस ज़हर को शांति से पीता रहा। अंत में मैंने उनको कहा – आप लोग जो भी कहें, पर मेरी तो ईश्वरीय खोज पूरी हो गई और अब आश्रम के अपने सभी उत्तरदायित्व आप लोगों पर छोड़कर जा रहा हूँ। मेरे इस निर्णय से एक पल के लिये वे सभी हतप्रभ हो गये। मैं आश्रम से निकलकर चलने लगा तो कई संन्यासियों और मौजूद माताओं-बहनों के नयनों में आँसू आ गये। पर मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मुझे तो बाबा की श्रीमत पर अच्छी रीति से चलना है। मेरी भक्ति पूरी हो चुकी है और भक्ति का फल भगवान मिल गया है। मैं लौकिक घर पर आ गया। कई सगे-संबंधी मेरे लिए शादी का प्रस्ताव लेकर आने लगे। आश्रम लौकिक घर से नजदीक होने के कारण, रोज़ कोई न कोई मुझे वापिस आश्रम लौटने का प्रस्ताव लेकर आते रहे परंतु मैं रोज़ाना स्थानीय ब्रह्माकुमारी सेवाकेंद्र पर जाता रहा और बाबा की मुरली सुनता रहा। ईश्वरीय महावाक्य सुनने से मेरे सारे व्यर्थ संकल्प समाप्त हो गये। अब मन यही गुनगुनाता है –

लाख करे दुनिया
तेरा साथ ना छोड़ेंगे,
तेरा बनकर तुझसे ओ बाबा,
मुख ना मोड़ेंगे।

❖